राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ

खंडपीठ विशेष अपील (रिट) संख्या 898/2006

में

एकलपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 6291/1993

1. रेखा गुप्ता, पुत्री श्री पूरण मल गुप्ता, पत्नी श्री उमेश गुप्ता, उम्र लगभग 48 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
2. सुनीता गुप्ता, पुत्री श्री पूरण मल गुप्ता, पत्नी श्री तिलेश गुप्ता, उम्र लगभग 42 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
3. कमला देवी, पत्नी श्री पूरण मल गुप्ता, उम्र लगभग 75 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
4. आलोक गुप्ता, पुत्र श्री पूरण मल गुप्ता, उम्र लगभग 37 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
5. रेनू गुप्ता, पुत्री पूरण मल गुप्ता, पत्नी श्री राजेंद्र गुप्ता, उम्र लगभग 52 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
6. अशोक गुप्ता, पुत्र श्री पूरण मल गुप्ता, उम्र लगभग 50 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
7. राजेंद्र गुप्ता, पुत्र श्री पूरण मल गुप्ता, उम्र लगभग 46 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।
8. सीमा गुप्ता, पुत्री श्री पूरण मल गुप्ता, पत्नी श्री जीतेन्द्र गुप्ता, उम्र लगभग 38 वर्ष, निवासी 19-कल्याण कॉलोनी, टोंक फाटक, जयपुर।

----अपीलार्थी

बनाम

प्रबंध निदेशक-सह-अनुशासन प्राधिकारी, राजस्थान राज्य सहकारी बैंक लिमिटेड, नेहरू बाजार, जयपुर।

----प्रत्यार्थी

अपीलार्थी की ओर से	:	श्री हिमांशु रंजन सिंह भाटी, अधिवक्ता एवं श्री डेविड मेहला, अधिवक्ता श्री संदीप सिंह शेखावत, अधिवक्ता
प्रत्यार्थी की ओर से	:	श्री राहुल कामवार, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव

माननीय न्यायमूर्ति प्रवीर भटनागर

आदेश

रिपोर्टेबल

24/07/2023

1. सुनवाई की गई।

2. यह अपील इस न्यायालय की सिविल रिट याचिका संख्या 6291/1993 में विद्वान् एकलपीठ द्वारा पारित आदेश दिनांक 24.04.2006 के विरुद्ध निर्देशित है जिसके तहत मृतक-अपीलार्थी द्वारा दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई थी।

3. इस मामले में शामिल विवाद के निर्धारण के लिए आवश्यक तथ्य हैं:

मृतक-अपीलार्थी को शुरुआत में वर्ष 1962 में लिपिक के पद पर नियुक्त किया गया था। अंततः, राजस्थान राज्य सहकारी बैंक लिमिटेड (बाद में "बैंक" के रूप में संदर्भित) में उप प्रबंधक के रूप में काम करते हुए, उच्च पद पर पदोन्नति पर, उसे विभागीय जांच के क्रम में दिनांक 21.02.1991 को निलंबित कर दिया गया था। इसके बाद दिनांक 27.03.1991 के ज्ञापन के माध्यम से एक आरोप-पत्र दायर किया गया। मृतक-अपीलार्थी के खिलाफ आरोप थे कि जब वह 1989 से 08.01.1991 तक जयपुर में बैंक की जवाहर नगर शाखा में शाखा प्रबंधक के रूप में तैनात रहे, तब बैंक को वित्तीय हानि पहुँचाने के साथ-साथ अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने के उद्देश्य से रियायती दरों पर बैंक निधि के रिकॉर्ड के हेरफेर, बैंक धन के दुरुपयोग और उपयोग में भी शामिल थे। आरोपों के बयान में विभिन्न अनियमितताएं, शक्तियों का कथित दुरुपयोग और मृतक-अपीलार्थी द्वारा की गई वित्तीय अनियमितताएं शामिल थीं। मृतक-अपीलार्थी को अपना उत्तर दाखिल करने के लिए कहा गया था, लेकिन वह प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति और गवाहों के बयान सहित दस्तावेजों की आपूर्ति के लिए जोर देता रहा। फिर भी पूछताछ आगे बढ़ी जांच अधिकारी

नियुक्त किया गया। जांच अधिकारी ने जांच पूरी की और 19.12.1991 को जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की। जांच रिपोर्ट के आधार पर, मृतक-अपीलार्थी को 05.03.1992 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मृतक-अपीलार्थी शुरू से ही दस्तावेजों की आपूर्ति के लिए जोर देता रहा था। कारण बताओ नोटिस तामील होने के बाद भी उनका प्रार्थना-पत्र कायम रहा। मृतक-अपीलार्थी द्वारा 09.04.1992 और 19.05.1992 को दो आवेदन दायर किए गए थे। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी की शिकायत सहित सामग्री की जांच करते समय यह विचार किया कि मृतक-अपीलार्थी उसके द्वारा मांगे गए दस्तावेजों की आपूर्ति का पात्र था। इसके परिणामस्वरूप, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा 26.05.1992 को एक आदेश पारित किया गया। उक्त आदेश में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी को उसके द्वारा मांगे गए और अनुसूची-क के अनुसार सूचीबद्ध दस्तावेजों की प्रति लेने और 15 दिनों की अवधि के भीतर जांच अधिकारी के समक्ष अपना संस्करण प्रस्तुत करने की अनुमति दी। जांच अधिकारी को अतिरिक्त तथ्यों की जांच करने का निर्देश दिया गया था, जो मृतक-अपीलार्थी द्वारा उसके ध्यान में लाया जा सकता है और आगे की जांच करके रिपोर्ट प्रस्तुत की जा सकती है। इसके बाद, मृतक-अपीलार्थी ने एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया। आक्षेपित आदेश से ऐसा प्रतीत होता है कि जांच अधिकारी ने फिर से अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके परिणामस्वरूप दिनांक 09.09.1992 को आक्षेपित आदेश पारित हुआ, जिसके द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी को उसके खिलाफ कथित कदाचार का दोषी ठहराया और सेवा से निष्कासन की शास्ति लगाई।

4. मृतक-अपीलार्थी ने अपील का लाभ नहीं उठाया लेकिन इस न्यायालय के समक्ष रिट याचिका दायर की। रिट याचिका में, मृतक-अपीलार्थी ने दस्तावेजों की गैर-आपूर्ति, अधिकार क्षेत्र की कमी, सक्षम प्राधिकारी द्वारा बिना सोचे-समझे आदेश पारित करना, बचाव पर विचार न करना और दंड की गंभीरता के अनुपात में न होना जैसे कई मुद्दे उठाए। हालाँकि, विद्वान एकलपीठ ने दिनांक 24.04.2006 के आक्षेपित आदेश द्वारा रिट याचिका को खारिज कर दिया।

5. विद्वान एकलपीठ ने माना कि मृतक-अपीलार्थी को बार-बार रिकॉर्ड का निरीक्षण करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था, लेकिन मृतक-अपीलार्थी ने उन अवसरों का

लाभ उठाने से परहेज किया और जब पत्र दिनांक 26.05.1992 के माध्यम से उसे एक और अवसर दिया गया, तो मृतक-अपीलार्थी ने ऐसा नहीं किया, तो एक पत्र देने के अलावा जांच अधिकारी के समक्ष कोई भी अतिरिक्त प्रस्तुतिकरण नहीं किया। यह भी माना गया कि विवादित आदेश तत्कालीन प्रबंध निदेशक द्वारा दी गई मंजूरी के बाद पारित किया गया था, अत: यह अनुमान लगाया जाना चाहिए कि मंजूरी देकर संबंधित प्रशासक ने पूरे तथ्यों पर अपना सोच-विचार किया था। इस प्रकार विचार करने पर रिट याचिका खारिज कर दी गई।

6. अनुशासनात्मक प्राधिकारी और फिर विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश की तत्थयता और वैधता पर प्रश्न उठाया। एकलपीठ, अपीलार्थीगण के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि 09.09.1992 को अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूरी तरह से उल्लंघन है क्योंकि जांच अधिकारी द्वारा भरोसा किया गया एक भी दस्तावेज कभी भी मृतक-अपीलार्थी को प्रदान नहीं किया गया था। जांच के निष्कर्ष तक उनका कहना था कि मृतक-अपीलार्थी के खिलाफ कई आरोप थे, वे ज्यादातर बैंकिंग लेनदेन से संबंधित रिकॉर्ड की सामग्री पर आधारित थे। गवाहों या दस्तावेज़ों की कोई सूची उपलब्ध नहीं कराई गई। मृतक-अपीलार्थी तब तक प्रभावी उत्तर दाखिल करने में अक्षम था जब तक कि आरोपों में संदर्भित दस्तावेज़ मृतक-अपीलार्थी को प्रदान नहीं किए गए थे या कम से कम उसे नियम 16 (3) के तहत प्रदत्त अधिकार के प्रयोग में उन दस्तावेजों का विधिवत निरीक्षण करने की अनुमति नहीं दी गई थी। राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 (बाद में "1958 के नियम" के रूप में संदर्भित) राजस्थान सिविल सेवा के मामले में लागू होते हैं, जिन्हें प्रत्यर्थी-बैंक द्वारा विधिवत अपनाया गया था। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि जांच अधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी को प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध कराए बिना जांच की, न ही उसे कोई उत्तर दाखिल करने से पहले प्रासंगिक समय पर दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी और इस तरह, यह पूरी तरह से एक तरफा जांच थी। जांच अधिकारी के पास मौजूद दस्तावेजों के आधार पर जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करके अपराध का अनुमान लगाया गया। अत:, ऐसी जांच रिपोर्ट शुरू से ही अमान्य थी और उस पर कार्रवाई नहीं की जा सकती थी।

अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता की अगली दलील यह है कि अनुशासनात्मक

प्राधिकारी ने हालांकि मृतक-अपीलार्थी की शिकायत की सराहना की कि मांग के बावजूद उसे एक भी दस्तावेज उपलब्ध कराए बिना पूरी जांच की गई, लेकिन जांच रिपोर्ट को खारिज नहीं किया गया। उनका कहना था कि एक बार जब यह पाया गया कि पूरी जांच प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए की गई थी, तो इसका एकमात्र परिणाम यह हुआ कि जांच नए सिरे से शुरू होनी चाहिए थी। आगे की जांच करने और अतिरिक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी के निर्देश अवैध हैं और अवैधता को कायम रखने का प्रयास करते हैं जो पहले प्रासंगिक दस्तावेजों की आपूर्ति के बिना विभागीय जांच आयोजित करने में किया गया था। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता की अगली दलील यह है कि मामले में लागू सेवा नियम में यह प्रावधान हैं कि निदेशक मंडल बड़ी शास्ति लगाने के लिए सक्षम प्राधिकारी होगा। हालाँकि, वर्तमान मामले में, प्रबंध निदेशक ने आदेश पारित किया और लागू आदेश से पता चलता है कि प्रशासक की मंजूरी ले ली गई है। यह दिखाने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं रखी गई है कि पूरे रिकॉर्ड और फाइलें सक्षम प्राधिकारी के समक्ष रखी गई थीं, उन्होंने सोच-विचार किया और निर्णय लिया और प्रबंध निदेशक ने केवल सक्षम प्राधिकारी के निर्णय के बारे में बताया। दूसरी ओर, आक्षेपित आदेश केवल यह दर्शाता है कि विवेक का प्रयोग केवल प्रबंध निदेशक द्वारा किया गया था, किसी और के द्वारा नहीं। किसी भी मामले में, यह तर्क दिया जाता है, एक बार जब कानून को निदेशक मंडल द्वारा अनुशासनात्मक प्राधिकारी की शक्ति का प्रयोग करने की आवश्यकता होती है, तो प्रबंध निदेशक द्वारा पारित आदेश शुरू से ही अवैध था और दोष को केवल प्रशासक की मंजूरी के आधार पर ठीक नहीं किया जा सकता था।

7. अपीलार्थीगण के लिए विद्वान अधिवक्ता की अगली दलील यह है कि यद्यपि मृतक-अपीलार्थी बचाव सहायक की सहायता लेने का पात्र था, फिर भी उसे वह नहीं दिया गया था। हालाँकि, याचिका में विशेष रूप से इसकी वकालत नहीं की गई है, बहस के दौरान इस बात पर भी प्रकाश डाला गया कि यह बेहद संदिग्ध है कि क्या किसी प्रस्तुतकर्ता अधिकारी को नियुक्त किया गया था। उनका कहना था कि जिस तरह से जांच अधिकारी ने जांच की उससे पता चलता है कि जांच अधिकारी केवल अभियोजक की भूमिका निभा रहे थे। उन्होंने न केवल दस्तावेज़ स्वयं प्रस्तुत किये बल्कि मृतक-अपीलार्थी से पूछताछ भी की। अतः इस कारण से भी जांच दूषित हो गयी है।

8. अगला निवेदन यह है कि मृतक-अपीलार्थी के बचाव पर उचित विचार नहीं किया गया है। इस दलील पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कि मृतक-अपीलार्थी को सुनवाई का उपयुक्त और उचित अवसर नहीं दिया गया था, उनहोंने कहा कि मृतक-अपीलार्थी द्वारा प्राधिकारी के समक्ष जो भी बचाव प्रस्तुत किया गया था, उसकी भी उचित सराहना नहीं की गई थी। अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि यह तर्क दिया गया है कि आरोपों की प्रकृति और मृतक-अपीलार्थी द्वारा कथित कदाचार इतनी गंभीर प्रकृति का नहीं था कि सेवा से हटाने की बड़ी शास्ति लगाई जाए। मृतक-अपीलार्थी का संपूर्ण सेवा रिकॉर्ड बेदाग था और उसने अपने सराहनीय और समर्पित कार्य के लिए कई प्रशंसाएँ और पुरस्कार अर्जित किए। अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा यह तय करने के लिए कि किस प्रकार की सजा दी जानी चाहिए, इन सभी पहलुओं पर विचार नहीं किया गया और यांत्रिक रूप से सेवा से निष्कासन का शास्ति लगाने का निर्णय लिया गया। अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि, लगाई गई शास्ति कदाचार की गंभीरता के अनुपात में आश्चर्यजनक रूप से असंगत है। अत:, यह तर्क दिया जाता है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश को क्षेत्राधिकार की कमी, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन, सोच-विचार न करने और मृतक-अपीलार्थी को सेवा में मानते हुए पारित किए जाने वाले परिणामी आदेशों के कारण दोषपूर्ण घोषित किया जा सकता है। सेवा में मानते हुए सभी वेतन के साथ सेवा में रहें और सेवानिवृत्ति की तारीख से मृतक-अपीलार्थी की मृत्यु की तारीख तक पेंशन का भुगतान किया जाए और उसके बाद, मृतक-अपीलार्थी की मृत्यु की तारीख से उसकी विधवा को पारिवारिक पेंशन के अन्य लाभ प्रदान किए जाएं।

9. अपनी दलीलों के समर्थन में, अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने **काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ और अन्य; 1986 (3) एससीसी 229, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शत्रुघ्न लाल और अन्य; 1998 (6) एससीसी 651, टी. ताकानो बनाम भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड और अन्य; 2022 (8) एससीसी 162, भारत संघ और अन्य बनाम राम लखन शर्मा; 2018 (7) एससीसी 670** और **सुजीतेंद्र नाथ सिंह रॉय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य; 2015 (12) एससीसी 514 और रामकल्याण गुप्ता बनाम राजस्थान राज्य, खंडपीठ विशेष अपील (रिट) क्रमांक 721/2015** के मामले में भी इस न्यायालय के निर्णय पर **भरोसा जताया।**

10. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि भले ही मृतक-अपीलार्थी द्वारा मांगे गए विशिष्ट दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए थे, मृत-अपीलार्थी को दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई थी जो दिनांक 31.03.1992 के पत्र से परिलक्षित होता है। उनका कहना था कि बैंक रिकॉर्ड औपचारिक थे और मृत-अपीलार्थी को हर दस्तावेज़ उपलब्ध कराना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं था। हालाँकि, एक बार जब मृतक-अपीलार्थी को रिकॉर्ड के निरीक्षण की अनुमति दी गई, तो 1958 के नियमों के नियम 16 (3) के आदेश का काफी हद तक अनुपालन किया गया। मृतक-अपीलार्थी यह स्थापित करने में विफल रहा है कि अभिलेखों का निरीक्षण करने के बावजूद दस्तावेजों की आपूर्ति न करने के कारण उसके साथ क्या पूर्वाग्रह हुआ।

11. उन्होंने तर्क दिया कि वर्तमान मामले में, जहां तक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति की आपूर्ति की मांग का संबंध है, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने प्रारंभिक जांच केवल प्रथम दृष्टया यह देखने के लिए की कि एक नियमित विभागीय जाँच करना आवश्यक हो गया है। न तो जांच अधिकारी और न ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने उस अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर भरोसा किया है, जिन्होंने नियमित विभागीय जांच के दौरान उसके सामने रखी गई सामग्री के आधार पर जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों की पुष्टि की मांग करते हुए प्रारंभिक जांच की थी। अतः, ऐसी स्थिति में, यह तर्क दिया जाता है कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की आपूर्ति न करने से जांच दूषित नहीं होती है।

12. अगली प्रस्तुति यह है कि जांच अधिकारी द्वारा जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बाद भी जब मृतक-अपीलार्थी ने दस्तावेजों की आपूर्ति की मांग की, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 26.05.1992 आदेश के तहत मृतक-अपीलार्थी को सभी दस्तावेजों की आपूर्ति का निर्देश दिया। मृतक-अपीलार्थी को वे सभी दस्तावेज़ उपलब्ध कराए गए और उसे अपना बचाव या उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया। इस स्तर पर भी, मृतक-अपीलार्थी ने एक लिखित निवेदन दायर किया, लेकिन उसने किसी भी आरोप को पूरा नहीं किया और केवल दस्तावेजों की आपूर्ति न करने की बात दोहराता रहा। अतः, किसी भी मामले में, बाद के चरण में, अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी को अपना उत्तर प्रस्तुत करने का अवसर दिया है, यदि पहले कोई अनियमितता हुई हो या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ हो तो उसका समाधान हो जाता है।

13. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि जहां तक बचाव सहायक की नियुक्ति का संबंध है, मृतक-अपीलार्थी द्वारा आवेदन प्राप्त होने के बाद, उसे उस व्यक्ति के नाम का खुलासा करना आवश्यक था जिसे वह बचाव प्रतिनिधि के रूप में अनुमति देना चाहता था। जहां तक बचाव सहायक को नियुक्त करने के अवसर से इनकार करने का प्रश्न है, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि जब मृतक-अपीलार्थी ने बचाव सहायक की नियुक्ति की मांग की, तो सक्षम प्राधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी से बचाव के लिए नाम, पदनाम का खुलासा करने की मांग की। हालाँकि, मृतक-अपीलार्थी ने ऐसा कोई नाम नहीं दिया, जो केवल यह दर्शाता है कि मृतक-अपीलार्थी कभी भी बचाव सहायक नियुक्त करने के लिए उत्सुक नहीं था। अतः, इस संबंध में शिकायत केवल एक बाद का विचार है।

14. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि जहां तक आरोप है कि आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा उस समय पारित नहीं किया गया है जब बैंक राजस्थान सहकारी के प्रावधानों के तहत नियुक्त प्रशासक के अधीन था। सोसायटी अधिनियम में निदेशक मंडल के स्थान पर प्रशासक कार्य कर रहा था। प्रबंध निदेशक ने मामले में कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया, लेकिन उन्होंने मामले को सक्षम प्राधिकारी अर्थात प्रशासक को भेज दिया और प्रशासक ने मामले पर विचार किया और मंजूरी दे दी और इसके बाद ही विवादित आदेश पारित किया गया, अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि यह आदेश अधिकार क्षेत्र से बाहर है. बहस के दौरान, प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी मौखिक रूप से प्रस्तुत किया कि बाद में बोर्ड ने अपनी शक्ति प्रबंध निदेशक को सौंप दी थी, अतः, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रबंध निदेशक सक्षम प्राधिकारी नहीं थे।

15. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता की अगली दलील यह है कि मृतक-अपीलार्थी ने बचाव गवाह का नेतृत्व किया था और जांच अधिकारी ने बचाव गवाह की दलीलों पर विधिवत विचार किया और इस तरह की सराहना पर तथ्य की अपनी खोज दर्ज की जो न्यायिक समीक्षा के दायरे से परे है। यह न्यायालय जांच के दौरान दिए गए मौखिक, दस्तावेजी साक्ष्य की सराहना या पुनः सराहना करने के लिए अपीलीय प्राधिकारी की भूमिका नहीं निभाएगा।

16. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता की अंतिम दलील यह है कि जहां तक सजा की मात्रा का प्रश्न है, वर्तमान में यह छोटी लापरवाही का मामला नहीं है। मृतक-अपीलार्थी द्वारा बैंक

रिकॉर्ड के कब्जे का अनुचित लाभ उठाने और अपने व्यक्तिगत आर्थिक लाभों के लिए पूरी तरह से अनधिकृत लेनदेन करके अनुचित लाभ उठाने के कई उदाहरण हैं। ऐसे मामले में, उसे सेवाओं से बर्खास्त करने के बैंक के निर्णय को चौंकाने वाला असंगत नहीं कहा जा सकता है, जो अकेले भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में सजा की मात्रा में हस्तक्षेप करने का आधार हो सकता है।

17. अपने तर्कों के समर्थन में प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता ने **डॉ. पी.एस. के मामले मलिक बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय और अन्य; 2020 (19) एससीसी 714, स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और अन्य बनाम एस.के. शर्मा; 1996 (3) एससीसी 364, भारतीय स्टेट बैंक एवं अन्य बनाम नरेंद्र कुमार पांडे; 2013 (2) एससीसी 740, भारतीय स्टेट बैंक और अन्य बनाम बेला बागची और अन्य; 2005 (7) एससीसी 435,** और **पंजाब राज्य बनाम नछत्तर सिंह (मृत) तृतीय एलआर. सिविल अपील संख्या 7257/2022 (@ एसएलपी (सिविल) संख्या 16535/2018) और विजय कुमार निगम (मृत) एलआरएस के माध्यम से बनाम म.प्र. राज्य** और **अन्य; 1996 (11) एससीसी 599 में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया।**

18. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुना है और हमारे समक्ष प्रस्तुत व्यापक प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेखों का भी अवलोकन किया है। प्रत्यर्थी ने विभागीय कार्यवाही के रिकॉर्ड प्रस्तुत नहीं करने का विकल्प चुना है। आगे बढ़ने से पहले, यह रिकॉर्ड पर रखना प्रासंगिक है कि इस अपील के लंबित रहने के दौरान, अपीलार्थी की मृत्यु हो गई और उसके कानूनी प्रतिनिधियों, उसकी विधवा, बेटे और बेटी को रिकॉर्ड में लाया गया और वे इस अपील पर मुकदमा चला रहे हैं।

19. आदेश की तत्थयता पर प्रश्न उठाने के लिए चुनौती का सबसे महत्वपूर्ण आधार यह था कि मृतक-अपीलार्थी को प्रासंगिक दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए थे। रिट याचिका पैरा 8 और उसके बाद में, यह अनुरोध किया गया है कि मृतक-अपीलार्थी ने 20.04.1991 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रतिलिपि के साथ-साथ बही-खातों की प्रतियां भी मांगी गईं, जिनके संबंध में अनियमितताओं का आरोप लगाया गया था। उसके द्वारा अपराध किया गया है। उक्त अनुरोध के साथ, मृतक-अपीलार्थी ने उत्तर दाखिल करने के लिए समय बढ़ाने की प्रार्थना की। उन्होंने दिनांक 17.05.1991 को

एक अन्य पत्र के माध्यम से दस्तावेजों की आपूर्ति और उत्तर दाखिल करने के लिए समय बढ़ाने के अपने पहले आवेदन का संदर्भ देते हुए।

20. दलीलों में यह भी कहा गया है कि इसके बाद, मृतक-अपीलार्थी को 23.05.1991 को एक पत्र प्राप्त हुआ। उक्त पत्र में कहा गया है कि चूंकि प्रारंभिक जांच में बताए गए सभी तथ्य आरोप-पत्र में बताए गए हैं, अत: प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। जहां तक अन्य दस्तावेजों का प्रश्न है, पत्र में कहा गया है कि विभागीय जांच के दौरान प्रतियां/दस्तावेज उन्हें उपलब्ध करा दिए जाएंगे। हालाँकि, ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी उत्तर दाखिल करने से पहले मृतक-अपीलार्थी की माँग के अनुसार, मृतक-अपीलार्थी द्वारा मांगे गए दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं कराए गए थे। यह याचिका में दिनांक 10.06.1991 के एक अन्य पत्र के अवलोकन से स्पष्ट है जिसमें पहले किए गए अनुरोध को यह बताते हुए दोहराया गया था कि उन्हें प्रभावी उत्तर प्रस्तुत करने के लिए उन दस्तावेजों की आवश्यकता क्यों है। इसका दूसरा उत्तर 18.06.1991 को भेजा गया जिसमें कहा गया कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध कराने का कोई औचित्य नहीं है। जहां तक अन्य दस्तावेजों का प्रश्न है, इस बार प्राधिकारी ने कहा कि मृतक-अपीलार्थी उन सभी दस्तावेजों की सूची जमा कर सकता है जिनकी उसे आवश्यकता है ताकि उन दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी जा सके और मृतक-अपीलार्थी उनके नोट्स भी ले सके। 04.07.1991 को, मृतक-अपीलार्थी ने दस्तावेजों को दोहराते हुए फिर से एक आवेदन प्रस्तुत किया, उसने उचित उत्तर प्रस्तुत करने के लिए अपनी मांग को उचित ठहराने की मांग की जो प्रारंभिक जांच रिपोर्ट पर गौर करने के लिए आवश्यक है। उन्होंने यह भी मांग की कि यदि कोई शिकायत की गई थी जिसके आधार पर प्रारंभिक जांच की गई थी, तो उसकी एक प्रति उन्हें भी दी जाए। मृतक-अपीलार्थी ने यह भी अनुरोध किया कि प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए गवाहों के बयान भी उसे दिए जाएं। उन्होंने दोहराया कि आरोप-पत्र में बताए गए खातों, वाउचर, डे-बुक और अन्य दस्तावेजों की प्रतियां प्रदान की जाएं।

21. रिट याचिका के पैरा 14 में यह विशेष रूप से अनुरोध किया गया है

नीचे के अनुसार:-

"14. यह कि गैर-याचिकाकर्ता ने याचिकाकर्ता को उसके द्वारा प्रार्थना

किए गए किसी भी दस्तावेज़ की प्रति नहीं दी और न ही उसके निरीक्षण और उसमें से नोट्स लेने के लिए उसे कोई रिकॉर्ड उपलब्ध कराया गया है। गैर-याचिकाकर्ताओं की दुर्भावना और मनमानी कार्रवाई इस तथ्य से स्पष्ट रूप से सामने आती है कि दिनांक 19-7-1991 के आदेश द्वारा जांच अधिकारी नियुक्त करने का आदेश दिया गया है। इस आदेश की प्रति यहां प्रस्तुत की गई है और इसे प्रदर्श-12 के रूप में चिह्नित किया गया है।

उपरोक्त पैराग्राफ में दिए गए कथनों से पता चलता है कि रिट याचिका में दलील यह थी कि उन्हें न तो दस्तावेज़ उपलब्ध कराए गए और न ही किसी निरीक्षण की अनुमति दी गई। रिट याचिका के पैरा 14 में दिए गए कथनों के उत्तर में, प्रत्यर्थी का उत्तर इस प्रकार है:-

"9. रिट याचिका के पैरा 13 और 14 की सामग्री के संबंध में यह प्रस्तुत किया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता किसी न किसी कारण से आरोप-पत्र पर अपना उत्तर टाल रहा था और इस तरह अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा जांच अधिकारी नियुक्त करना उचित समझा गया और जांच करने के लिए और इस तरह, जांच अधिकारी को दिनांक 19.7.1991 के आदेश के तहत नियुक्त किया गया था (याचिकाकर्ता द्वारा रिकॉर्ड पर रखा गया प्रदर्श-12)।

प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत शपथ-पत्र पर दिए गए उत्तर का अवलोकन करने से पता चलता है कि मृतक-अपीलार्थी द्वारा दिए गए स्पष्ट दावों के विपरीत कि उसे दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए और रिकॉर्ड का निरीक्षण करने की भी अनुमति नहीं दी गई, कोई विशेष खंडन नहीं है। इस न्यायालय के समक्ष कोई सामग्री नहीं रखी गई है, जांच के रिकॉर्ड तो दूर, यह संतुष्ट करने के लिए कि जांच अधिकारी की नियुक्ति के बाद उत्तर प्रस्तुत करने और जांच शुरू होने से पहले भी, मृतक-अपीलार्थी को सभी रिकॉर्ड या दस्तावेज़ों का आपूर्ति का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई थी।

22. प्रत्यर्थी के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिनांक 31.03.1992 के संचार पर बहुत अधिक भरोसा किया गया है। यह प्रत्यर्थी का दस्तावेज़ है जिसे मृतक-अपीलार्थी द्वारा प्राप्त होने पर रिकॉर्ड पर रखा गया है। इस पत्र में कहा गया है कि मृतक-अपीलार्थी को बचत खाता संख्या 302 के संबंध में विभागीय जांच के दौरान कैलाश चंद का बयान और पत्र दिनांक 10.06.1991 की प्रति भी प्रदान की गई थी। इसमें यह भी कहा गया है कि मृतक-अपीलार्थी को जांच अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत सभी बयानों की प्रति और जांच रिपोर्ट की

एक प्रति भी प्रदान की गई थी। इस पत्र में, यह कहा गया है कि जहां तक दिनांक 04.07.1991 के अनुरोध पत्र के माध्यम से दस्तावेजों की आपूर्ति का संबंध है, मृतक-अपीलार्थी को जांच के दौरान अभिलेखों के निरीक्षण की अनुमति दी गई थी। पत्र में कोई तारीख नहीं है कि किस तारीख को इस तरह के निरीक्षण की अनुमति दी गई थी।

23. किसी भी मामले में, मृतक-अपीलार्थी ने दस्तावेज़ की सामग्री को स्वीकार नहीं किया। रिट याचिका के साथ मृतक-अपीलार्थी को प्राप्त और सूचित किए गए दस्तावेज़ को दाखिल करने मात्र से दस्तावेज़ों की सामग्री को स्वीकार करना नहीं माना जाएगा। मृतक-अपीलार्थी ने रिट याचिका के पैरा 14 में दिए गए शपथ-पत्र में स्पष्ट रूप से कहा कि उसे न तो उसके द्वारा मांगे गए कोई दस्तावेज उपलब्ध कराए गए हैं और न ही उसे रिकॉर्ड का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई है। दिनांक 31.03.1992 के पत्र में बताए गए दस्तावेजों की आपूर्ति पूछताछ के दौरान दर्ज किए गए बयान प्रतीत होती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मृतक-अपीलार्थी द्वारा जिन दस्तावेजों की मांग की गई थी, वे उसे प्रदान कर दिए गए थे। ऐसी स्थिति में जब मृतक-अपीलार्थी ने रिट याचिका में स्पष्ट दलीलें दी थीं, तो प्रत्यर्थी पर स्पष्ट रूप से यह साबित करने का बोझ था कि मृतक-अपीलार्थी को दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी गई थी। जैसा कि हम यहां पहले ही प्रत्यर्थी के उत्तर को उद्धृत कर चुके हैं, यह बेहद अस्पष्ट है। विभागीय जांच के समस्त रिकार्ड प्रत्यर्थी के पास उपलब्ध थे। एक बार जब मृतक-अपीलार्थी ने आरोप लगाया कि उसे निरीक्षण की अनुमति नहीं दी गई थी, तो केवल मृतक-अपीलार्थी को एक पत्र भेजना पर्याप्त नहीं हो सकता था। प्रत्यर्थी को रिकॉर्ड और/या विभागीय जांच के रिकॉर्ड पर उचित दस्तावेज पेश करके यह साबित करना आवश्यक था कि इस तरह के निरीक्षण की अनुमति वास्तव में मृत अपीलार्थी को दी गई थी।

24. अनुशासनात्मक प्राधिकारी के दिनांक 26.05.1991 के पत्र में इस तथ्य की स्पष्ट स्वीकृति है कि मृतक-अपीलार्थी द्वारा जिन दस्तावेजों की मांग की गई थी, वे उसे प्रदान नहीं किए गए थे। यदि ऐसा नहीं होता, तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी के पास यह निष्कर्ष दर्ज करने का कोई अवसर नहीं था कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है, अत: इसके अनुपालन में मृतक-अपीलार्थी द्वारा मांगे गए दस्तावेजों को उसे प्रदान करना आवश्यक है।

25. इसमें कोई विवाद नहीं है कि विभागीय जांच करने और उसकी प्रक्रिया को विनियमित करने के प्रयोजनों के लिए, प्रत्यर्थी ने 1958 के नियमों में निहित प्रावधानों को अपनाया और लागू किया है। यह आरोप-पत्र के अवलोकन से ही स्पष्ट है। यदि हम 1958 के नियमों के नियम 16(3) में निहित प्रावधानों को देखें, तो यह केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकताओं को शामिल करता है। 1958 के नियमों का नियम 16(3) इस प्रकार है:-

> "सरकारी कर्मचारी को, अपने बचाव की तैयारी के प्रयोजनों के लिए, ऐसे आधिकारिक रिकॉर्डों का निरीक्षण करने और उनसे उद्धरण लेने की अनुमति दी जाएगी जैसा कि वह निर्दिष्ट कर सकता है, बशर्ते कि ऐसी अनुमति से इनकार किया जा सकता है यदि, राय में लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी के अनुसार, ऐसे रिकॉर्ड इस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं हैं या उन्हें उन तक पहुंच की अनुमति देना सार्वजनिक हित के खिलाफ है।"

उपरोक्त प्रावधान, नियम के भाग के रूप में, जो प्रमुख दंड लगाने की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है, जहां एक दोषी कर्मचारी को प्रमुख दंड लगाने का प्रस्ताव करते हुए आरोप-पत्र जारी किया जाता है, वैधानिक नियम के रूप में निहित प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की आवश्यकता होती है, का कड़ाई से पालन किया जाए। नियम 16 का उप-नियम (3), जैसा कि यहां ऊपर बताया गया है, स्पष्ट रूप से आदेश देता है कि सरकारी कर्मचारी को, अपनी बचाव की तैयारी के प्रयोजनों के लिए, ऐसे आधिकारिक रिकॉर्ड का निरीक्षण करने और उद्धरण लेने की अनुमति दी जाएगी, जैसा कि वह निर्दिष्ट कर सकता है, बशर्ते कि ऐसी अनुमति हो यदि अनुशासनात्मक प्राधिकारी की राय में लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, ऐसे रिकॉर्ड उस उद्देश्य के लिए प्रासंगिक नहीं हैं या उस तक पहुंच की अनुमति देना सार्वजनिक हित के खिलाफ है, तो उसे अस्वीकार कर दिया जाएगा।

उक्त नियम को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर, यह स्पष्ट है कि अभिलेखों के निरीक्षण की अनुमति देने का उद्देश्य दोषी कर्मचारी को अपना बचाव तैयार करने में सक्षम बनाना है। बचाव की तैयारी उस चरण से शुरू होगी जब एक अपराधी कर्मचारी को उसे सौंपे गए आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत करना होगा। अतः, दोषी कर्मचारी को न केवल यह बताना आवश्यक है कि उसके खिलाफ क्या आरोप हैं, बल्कि उस सामग्री, दस्तावेजी साक्ष्य का भी

खुलासा करना आवश्यक है, जिसका उपयोग आरोपों को साबित करने के लिए उसके खिलाफ किया जाना आवश्यक है। जबकि नियम बचाव तैयारी के उद्देश्य से अभिलेखों के निरीक्षण की न्यूनतम आवश्यकता सुनिश्चित करता है, उचित मामले में, दस्तावेजों की आपूर्ति भी आवश्यक हो सकती है।

26. दस्तावेज़ दो श्रेणियों के हो सकते हैं। पहली श्रेणी उन दस्तावेज़ों की है जिन पर अभियोजन स्वयं सभी आरोपों को साबित करने के लिए भरोसा करता है। ऐसी स्थिति में, कर्मचारी के लिए उन दस्तावेजों की मांग करना आवश्यक नहीं है, लेकिन स्थिति की मांग के अनुसार उन दस्तावेजों का या तो निरीक्षण करना या आपूर्ति करना आवश्यक है। यह इस सिद्धांत की मान्यता है कि 1958 के नियमों के नियम 16(3) में कहा गया है कि सरकारी कर्मचारी को उसके द्वारा निर्दिष्ट आधिकारिक रिकॉर्ड का निरीक्षण करने और उद्धरण लेने की अनुमति दी जाएगी। यह केवल यह सुनिश्चित करने के लिए है कि दोषी कर्मचारी को उन दस्तावेजों/अभिलेखों के बारे में पता चल जाए जो उसके खिलाफ आरोपों को बनाए रखने के लिए आधार बनाए गए हैं। "अपने बचाव की तैयारी के उद्देश्य से" अभिव्यक्ति का महत्व स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि निरीक्षण की अनुमति देने का चरण उत्तर दाखिल करने से पहले है।

27. हमारे विचार में, जांच के दौरान केवल दोषी कर्मचारी के अवलोकन के लिए रिकॉर्ड और दस्तावेजों को प्रस्तुत करना और उसके बाद जांच को आगे बढ़ाना, नियम 16 (3) की आवश्यकता को पूरा नहीं करता है। 1958 के नियम और केवल एक खोखली औपचारिकता होगी। अपराधी कर्मचारी से, जब तक सामग्री/दस्तावेज का खुलासा नहीं किया जाता, कोई यह उम्मीद नहीं कर सकता कि वह अपना बचाव तैयार करने में सक्षम होगा। वह बस इतना ही कह सकता है कि वह सभी आरोपों से इनकार करता है। लेकिन यह इसका अंत नहीं है. उसे आरोपों को प्रभावी ढंग से अस्वीकार करने की अनुमति दी जानी चाहिए और उस उद्देश्य के लिए, अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा की गई सामग्री को या तो प्रतिलिपि प्रदान करके या निरीक्षण की अनुमति देकर आवश्यक रूप से प्रकट किया जाना चाहिए।

28. वर्तमान मामले में, जैसा कि आरोप-पत्र में लिखा गया है, मृतक-अपीलार्थी के खिलाफ सभी आरोप विभिन्न बैंकिंग लेनदेन के साक्ष्य बैंक के दस्तावेजों/रिकॉर्डों पर आधारित थे। आरोप-पत्र के साथ दस्तावेजों और गवाहों की सूची संलग्न नहीं की गई थी।

हालाँकि, आरोप-पत्र के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा मृतक-अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को साबित करने के लिए जिन दस्तावेजों पर भरोसा करने की मांग की गई थी। अतः, मृतक-अपीलार्थी ने उसी तरीके से अपना अनुरोध किया। यदि आरोप-पत्र के साथ दस्तावेजों और गवाहों की कोई सूची संलग्न की गई होती, तो मृतक-अपीलार्थी से उन दस्तावेजों को स्पष्ट रूप से इंगित करने की अपेक्षा की जाती थी, जिन्हें आरोप-पत्र में सूचीबद्ध किया गया है। दस्तावेजों की आपूर्ति के लिए आवेदन में, मृतक-अपीलार्थी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि उसे उन खातों की फोटोकॉपी प्रदान की जानी चाहिए जिनके संबंध में अनियमितता और कदाचार का आरोप लगाया गया था। अगले पत्र में भी यही प्रार्थना 10.06.1991 को दोहराई गई। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि उन्हें दस्तावेजों और गवाहों की सूची प्रदान की जाए। लेकिन मृतक-अपीलार्थी को कोई सूची उपलब्ध नहीं कराई गई। उत्तर में पत्र दिनांक 18.06.1991 द्वारा प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति देने से इनकार करते हुए कहा गया कि उन्हें जांच के दौरान सभी दस्तावेजों का निरीक्षण करने की अनुमति दी जाएगी। अर्थात जांच शुरू होने तक किसी भी दस्तावेज का निरीक्षण तक नहीं करने दिया गया। दिनांक 04.07.1991 के एक बाद के पत्र में, मृतक-अपीलार्थी ने न केवल पहले के अनुरोध को दोहराया, बल्कि की गई शिकायत, यदि कोई हो, की प्रति की भी मांग की, जिसके आधार पर जांच का आदेश दिया गया था। उन्होंने विशेष रूप से कहा कि खातों, वाउचर और डे-बुक की फोटोकॉपी और आरोप-पत्र में उल्लिखित किसी भी अन्य दस्तावेज़ की प्रतिलिपि उन्हें प्रदान की जाए। किसी भी दस्तावेज़ की आपूर्ति नहीं करने और मृतक-अपीलार्थी द्वारा आवश्यक विशिष्ट दस्तावेज़ की स्पष्ट मांग के बावजूद, दस्तावेज़ के लिए उसके अनुरोध को इस तरह से अस्वीकार कर दिया गया था कि वह दस्तावेजों की सूची प्रस्तुत कर सकता था।

29. इस प्रकार, यह देखा जाएगा कि मृतक-अपीलार्थी को न तो निरीक्षण की अनुमति दी गई थी और न ही उसके द्वारा मांगे गए दस्तावेजों की आपूर्ति की गई थी।

<u>काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ (सुप्रा.)</u> के मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:-

> "10.....जब कोई सरकारी कर्मचारी किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही का सामना कर रहा हो, तो वह अपने खिलाफ आरोपों को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए उचित अवसर पाने का पात्र है और विभागीय जांच का

सामना करने वाला कोई भी व्यक्ति तब तक आरोपों को प्रभावी ढंग से पूरा नहीं कर सकता जब तक कि उसके खिलाफ इस्तेमाल किए जाने वाले प्रासंगिक बयानों और दस्तावेजों की प्रतियां उसे उपलब्ध नहीं कराई जाती हैं। ऐसी प्रतियों के अभाव में, संबंधित कर्मचारी अपना बचाव कैसे तैयार कर सकता है, गवाह से जिरह कैसे कर सकता है, और यह दिखाने के लिए विसंगतियों को कैसे इंगित कर सकता है कि आरोप अविश्वसनीय हैं? यह समझना मुश्किल है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने अड़ियल रुख क्यों अपनाया और अपीलार्थी द्वारा इस संबंध में किए गए विशिष्ट अनुरोध के बावजूद प्रतियां प्रस्तुत करने से इनकार कर दिया।.....

न्यायमूर्ति ने आगे कहा कि दस्तावेजों या बयानों की प्रतियों की आपूर्ति न करने से कर्मचारी के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करेगा। इसे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:-

"11.....दस्तावेज़ों या बयानों की प्रतियां देने से इनकार करने के परिणामस्वरूप विभागीय जांच का सामना करने वाले कर्मचारी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर करता है। हम प्रत्यर्थीगण की ओर से आग्रह की गई इस दलील को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थी के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं था। अपीलार्थी ने अपने शपथ-पत्र में बारह पृष्ठों की सारणीबद्ध रूप में यह बताया है कि दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्ति न होने के कारण अपने बचाव के संबंध में उसे किस प्रकार पूर्वाग्रह से ग्रसित किया गया है। हम उक्त कथन को पुनः प्रस्तुत करके रिकॉर्ड पर बोझ डालना आवश्यक नहीं समझते हैं। प्रत्यर्थी हमें संतुष्ट नहीं कर पाए कि अपीलार्थी के साथ कोई पक्षपात नहीं किया गया।"

इस मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय के पहले के निर्णयों में यह भी बताया गया था कि उचित अवसर से इनकार करना क्या होगा:-

"13. अपीलार्थी ने इस प्रस्ताव के समर्थन में तिरलोक नाथ बनाम भारत संघ 1967 एसएलआर 759 (एससी) पर भरोसा किया कि यदि जांच का सामना कर रहे एक लोक सेवक को दस्तावेजों की प्रतियां प्रदान नहीं की जाती हैं, तो यह उचित अवसर से इनकार करने के समान होगा। इस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है:

यदि उसने ऐसा करने का निर्णय लिया होता, तो दस्तावेज़ अपीलार्थी के लिए उन गवाहों से जिरह करने के लिए उपयोगी होते,

जिन्होंने उसके खिलाफ गवाही दी थी। यदि दस्तावेजों की प्रतियां अपीलार्थी को फिर से प्रस्तुत की गईं, तो वह उनका अवलोकन करने के बाद, नियम के तहत अपने अधिकार का प्रयोग कर सकता था और मौखिक जांच कराने के लिए कह सकता था। अतः, हमारे विचार में जांच अधिकारी द्वारा अपीलार्थी को एफआईआर और सिद्धिपुरा हाउस में दर्ज किए गए बयानों जैसे दस्तावेजों की प्रतियां प्रदान करने में विफलता और जांच के दौरान अपीलार्थी को अपना बचाव करने में पूर्वाग्रह पैदा करना चाहिए।

पंजाब राज्य बनाम भगत राम 1975 (1) एससीसी 155 और यू.पी. राज्य बनाम वि. मो. शरीफ 1982 (2) एससीसी 376 मामले पर भी भरोसा किया गया है। इस प्रस्ताव के समर्थन में कि विभागीय जांच का सामना कर रहे सरकारी कर्मचारी को गवाहों के बयानों की प्रतियां प्रदान की जानी चाहिए। इस न्यायालय द्वारा पंजाब राज्य बनाम भगत राम मामले में यह जोरदार ढंग से कहा गया है:

राज्य ने तर्क दिया कि प्रत्यर्थी बयानों की प्रतियां प्राप्त करने का पात्र नहीं है। राज्य का तर्क यह था कि प्रत्यर्थी को गवाहों से जिरह और जिरह के दौरान प्रत्यर्थी को गवाहों से बयानों का सामना करने का अवसर दिया गया था। यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थी को साक्ष्य के सार से परिचित कराने के लिए सारांश पर्याप्त था।

प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने के उचित अवसर का अर्थ यह है कि सरकारी कर्मचारी को उन आरोपों के खिलाफ स्वयं का बचाव करने का उचित अवसर दिया जाता है जिन पर जांच की जाती है। सरकारी कर्मचारी को अपने अपराध से इनकार करने और अपनी बेगुनाही साबित करने का अवसर दिया जाना चाहिए। वह ऐसा तभी कर सकता है जब उसे बताया जाए कि उसके खिलाफ क्या आरोप हैं। वह अपने ख़िलाफ़ पेश किये गये गवाहों से जिरह करके ऐसा कर सकता है। बयानों की आपूर्ति का उद्देश्य यह है कि सरकारी कर्मचारी, सरकारी कर्मचारी के खिलाफ जांच के लिए प्रस्तावित गवाहों के पिछले बयानों का उल्लेख करने में सक्षम होगा। जब तक सरकारी कर्मचारी को बयान नहीं दिए जाएंगे तब तक वह प्रभावी और उपयोगी जिरह नहीं कर पाएगा।

जांच के दौरान जांच की गई और सरकारी कर्मचारी के खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में जांच में पेश किए गए गवाहों की प्रतियों से सरकारी कर्मचारी को इनकार करना अनुचित है। एक सारांश सरकारी कर्मचारी को प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर देने की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता है।

30. प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता ने **स्टेट बैंक ऑफ पटियाला और अन्य बनाम एस.के. शर्मा (सुप्रा.)** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। यह कहने के लिए कि जब तक यह नहीं पाया जाता है कि जिस व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई की गई है, उसके प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है, केवल इस आधार पर न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है कि दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराए गए थे।

उपरोक्त निर्णय में, यह माना गया कि यदि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पूर्ण उल्लंघन होता है तो यह कार्रवाई को अमान्य कर देगा, लेकिन यदि सिद्धांतों के केवल एक पहलू का उल्लंघन होता है अर्थात कोई पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया/कोई निष्पक्ष सुनवाई नहीं दी गई, तो परीक्षण करें। पूर्वाग्रह लागू करना होगा और कोई पूर्वाग्रह पैदा नहीं करना होगा, हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। तथ्यों पर, यह पाया गया कि यद्यपि गवाहों के बयानों की प्रतियां उपलब्ध नहीं कराई गई थीं, फिर भी दोषी कर्मचारी को गवाहों की जांच से तीन दिन पहले उन्हें पढ़ने और उनसे नोट्स लेने की अनुमति दी गई थी और इस दौरान दोषी कर्मचारी द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी। इस प्रकार उपरोक्त मामला तथ्यों के आधार पर अलग-अलग है। जैसा कि यहां ऊपर कहा गया है, प्रत्यर्थी यह स्थापित करने में विफल रहा है कि निरीक्षण की भी अनुमति दी गई थी। अतः, वर्तमान में ऐसा मामला है जहां न तो दस्तावेज़ उपलब्ध कराए गए और न ही निरीक्षण की अनुमति दी गई।

31. **पंजाब राज्य बनाम नछत्तर सिंह (मृत) एलआर (सुप्रा.)** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया गया है। उस मामले में भी, "पूर्वाग्रह सिद्धांत" लागू किया गया था और यह देखा गया था कि ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला था कि कुछ दस्तावेज़ों की आपूर्ति न होने के कारण दोषी कर्मचारी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो। वर्तमान मामले में, ऐसा नहीं है कि कुछ दस्तावेजों की आपूर्ति की गई थी और दोषी कर्मचारी दस्तावेजों के दूसरे सेट की आपूर्ति न करने के कारण कोई पूर्वाग्रह स्थापित नहीं कर सका। वर्तमान में एक ऐसा मामला है जहां आरोपों को साबित करने के लिए जांच अधिकारी द्वारा जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था, उनमें से कोई भी न तो दिया गया था और न ही निरीक्षण की अनुमति दी गई थी।

वर्तमान मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, अभियोजन का पूरा मामला बैंक रिकॉर्ड पर आधारित था, जिन पर जांच अधिकारी द्वारा आरोपों को साबित करने के

लिए बहुत अधिक भरोसा किया गया था, न तो आपूर्ति की गई और न ही निरीक्षण की अनुमति दी गई, जिससे दोषी कर्मचारी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

32. अगला प्रश्न जो विचार के लिए उठता है वह यह है कि क्या प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति उपलब्ध न कराने के परिणामस्वरूप प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का खंडन हुआ है।

हमने देखा है कि न तो जांच रिपोर्ट में और न ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश में, प्रारंभिक जांच रिपोर्ट पर भरोसा किया गया है। यह ऐसा मामला भी नहीं है जहां मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य और जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों पर भरोसा करने के लिए प्रारंभिक जांच करने वाले अधिकारी के बयान पर भरोसा किया गया हो।

जहां तक प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की आपूर्ति न करने का प्रश्न है, यह मृतक-अपीलार्थी का मामला नहीं है कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट के निष्कर्ष अपराध की खोज को दर्ज करने का आधार थे। प्रारंभिक जांच आरोपों को साबित करने के लिए नहीं की जाती है, बल्कि केवल प्रथम दृष्टया राय बनाने के लिए की जाती है कि विभागीय जांच शुरू करने का मामला बनता है। इस तरह की कार्रवाई का उद्देश्य व्यापक तथ्य जुटाना है, जिसे इस बात पर राय बनाने का आधार बनाया जा सके कि आरोप-पत्र जारी किया जाना चाहिए या नहीं। यह ऐसा मामला भी नहीं है जहां जांच अधिकारी या अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच के दौरान सृजित सामग्री के आधार पर दर्ज निष्कर्षों की पुष्टि करने के लिए प्रारंभिक जांच रिपोर्ट का उल्लेख किया हो।

33. **डॉ. पी.एस. मलिक बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय (सुप्रा.)** के मामले में तथ्यों के आधार पर यह पाया गया कि प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में दोषी कर्मचारी के खिलाफ कोई निष्कर्ष या आरोप नहीं थे, लेकिन केवल यह राय थी कि जांच की जानी चाहिए। यदि तथ्यों पर प्रारंभिक जांच केवल विभागीय जांच शुरू करने के लिए एक राय है और दोषी कर्मचारी के खिलाफ आरोपों को साबित करने के लिए कोई निष्कर्ष शामिल नहीं है, तो प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की प्रति की आपूर्ति न करने से जांच खराब नहीं होगी। इसे निम्न प्रकार से देखा गया है:-

> "26. इस प्रकार, अपील का अधिकार किसी पीड़ित व्यक्ति को तभी मिलता है जब धारा 13 के तहत नियोक्ता को रिपोर्ट सौंपी जाती है। धारा

13(3) आंतरिक शिकायत समिति की रिपोर्ट पर विचार करती है जब वह "निष्कर्ष पर पहुंचती है कि प्रत्यर्थी के खिलाफ आरोप साबित हो गया है"। किसी भी पक्ष का यह मामला नहीं है कि समिति की रिपोर्ट दिनांक 05.11.2016 वह रिपोर्ट है जिसमें याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप साबित हुआ है। यहां तक कि दूसरे परंतुक में धारा 11(1) के तहत, एकमात्र विचार निष्कर्षों की एक प्रति उपलब्ध कराना है। इस प्रकार, जब रिपोर्ट जिसमें कोई निष्कर्ष नहीं है, तो पक्षकार प्रतिलिपि प्राप्त करने की पात्र नहीं हैं। उच्च न्यायालय ने अपने जवाबी शपथ-पत्र में दलील दी है कि दिनांक 05.11.2016 की रिपोर्ट याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई निष्कर्ष वाली रिपोर्ट नहीं थी, बल्कि केवल यह राय व्यक्त की गई थी कि याचिकाकर्ता के खिलाफ अनुशासनात्मक जांच शुरू की जाए। इस प्रकार, हमारा विचार है कि दिनांक 05.11.2016 की प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की आपूर्ति न करने से याचिकाकर्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। चार्ज ज्ञापन दिनांक 23.02.2017 की प्रतिलिपि रिकॉर्ड पर लाई गई है, जो यह भी स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि चार्ज ज्ञापन दिनांक 05.11.2016 की प्रारंभिक जांच रिपोर्ट का संदर्भ नहीं देता है। इस प्रकार, यह नहीं कहा जा सकता कि दिनांक 05.11.2016 की रिपोर्ट की आपूर्ति न करने से याचिकाकर्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार, हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की इस दलील को स्वीकार नहीं करते हैं कि दिनांक 05.11.2016 की प्रारंभिक जांच रिपोर्ट की आपूर्ति न होने के कारण कार्यवाही ख़राब हो गई है।

34. **<u>विजय कुमार निगम (मृत), बनाम मध्य प्रदेश सरकार के माध्यम से</u>** मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया:-

"3. दो आधारों को उच्च न्यायालय में विचार के लिए रखा गया है और अपील में दोहराया गया है। मुख्य आधार यह था कि विभागीय जांच शुरू करने से पहले उनके खिलाफ की गई प्रारंभिक जांच की रिपोर्ट उन्हें नहीं दी गई थी और अतः, यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का उल्लंघन है। उच्च न्यायालय ने इस विवाद को खारिज कर दिया है और हमारे विचार से यह बिल्कुल सही है। प्रारंभिक रिपोर्ट केवल यह तय करने और आकलन करने के लिए है कि क्या दोषी अधिकारी के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई करना आवश्यक होगा और यह कर्मचारी के खिलाफ बर्खास्तगी का आदेश पारित करने के लिए कोई आधार नहीं बनाता है। उच्च न्यायालय ने यह भी तथ्य के रूप में पाया कि प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए व्यक्तियों के सभी बयान, जो रिपोर्ट का आधार बने, अपराधी अधिकारी को दिए गए थे। तब यह तर्क दिया गया

कि कांस्टेबलों में से एक, पलाईराम सह-अभियुक्त था, जिसे अपीलार्थी के साथ भी आरोपित किया गया था और अपीलार्थी के खिलाफ निर्णय लेने में उसके साक्ष्य को ध्यान में रखा गया था जो साक्ष्य में अस्वीकार्य है। विभागीय जांच में यह प्रश्न ही नहीं उठता कि कोई दोषी अधिकारी दूसरे के साथ सह-आरोपी है या नहीं। यह आईपीसी या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 के तहत एक अधिकारी के लिए निर्धारित अभियोजन में उत्पन्न होगा। विभागीय जांच स्ट्रिक्टो सेंसु में दर्ज साक्ष्य साक्ष्य अधिनियम, 1872 के प्रावधानों के अनुसार साक्ष्य नहीं है। अतः, पलाईराम का बयान यह रिकॉर्ड का हिस्सा भी बना जिसे अपीलार्थी के खिलाफ कदाचार का निर्णय करते समय ध्यान में रखा जा सकता है। पुलिस महानिरीक्षक ने कहा था कि भले ही उस सबूत को विचार से बाहर रखा गया हो, लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अन्य पर्याप्त सबूत थे कि अपीलार्थी ने जुए के आयोजक से अवैध परितोषण लिया था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय ने अपीलार्थी की रिट याचिका को खारिज करने में कोई कानूनी त्रुटि नहीं की है।

इसके अलावा, यह ऐसा मामला नहीं है जहां प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए गवाह के बयान अपराधी कर्मचारी को उसके प्रभावी बचाव के लिए दिए जाने और उन्हीं व्यक्तियों की विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाने के लिए आवश्यक थे, जिनकी नियमित विभागीय जांच के दौरान अभियोजन गवाह के रूप में जांच की गई थी और आरोपों को साबित करने के लिए उनके मौखिक साक्ष्य पर भरोसा किया गया। अतः, सुनवाई का उचित अवसर प्रदान न किए जाने के आधार पर जांच को दूषित करने के लिए प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए बयानों, यदि कोई हो, की आपूर्ति न करने से पहले मामले के तथ्यों पर पूर्वाग्रह स्थापित करना आवश्यक है।

35. अतः, पूर्वाग्रह अनिवार्य रूप से इस तथ्य से जुड़ा हुआ है कि क्या प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए बयान की प्रति विशेष रूप से उन मामलों में प्रदान नहीं की गई थी, जहां ऐसे व्यक्ति, जिसका बयान प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किया गया था, की भी अभियोजन गवाह के रूप में जांच की गई थी। **यू.पी. सरकार बनाम शत्रुघ्न लाल (सुप्रा.)** के मामले में, इसे इस प्रकार अभिनिर्धारित किया गया:-

"6. प्रारंभिक जांच, जो हमेशा अपराधी कर्मचारी के पीछे की जाती है, अक्सर आरोप-पत्र का पूरा आधार बन सकती है। अतः, इससे पहले कि किसी व्यक्ति को आरोप-पत्र पर अपना उत्तर प्रस्तुत करने के लिए कहा

जाए, उसके द्वारा इस संबंध में किए गए अनुरोध पर, उसे प्रारंभिक जांच के दौरान दर्ज किए गए गवाहों के बयानों की प्रतियां प्रदान की जानी चाहिए, विशेषकर यदि वे गवाह हैं विभागीय परीक्षण में परीक्षण किया जाना प्रस्तावित है। इस सिद्धांत को काशीनाथ दीक्षित बनाम भारत संघ और अन्य 1986 (3) एससीसी 229 में दोहराया गया था जिसमें यह भी निर्धारित किया गया था कि यह चूक विभागीय कार्यवाही को तब तक ख़राब कर देगी जब तक कि इसे एक तथ्य के रूप में दिखाया और स्थापित नहीं किया गया कि उन दस्तावेजों की प्रतियों की आपूर्ति न होने से अपराधी को अपने बचाव में कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ।

36. विभिन्न निर्णयों में बताई गई उपरोक्त कानूनी स्थिति को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि जहां प्रारंभिक जांच रिपोर्ट में दर्ज निष्कर्षों पर न तो जांच अधिकारी और न ही अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा भरोसा किया गया, तो प्रतिलिपि की आपूर्ति न करना प्रारंभिक जांच रिपोर्ट, बिना कुछ और बताए, *वास्तव में* प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं होगी।

37. यदि हम दिनांक 19.12.1991 की जांच रिपोर्ट को देखें, तो हम पाते हैं कि जांच अधिकारी ने मृतक-अपीलार्थी के खिलाफ आरोपों को साबित करते हुए अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में किसी भी मौखिक साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया है, बल्कि यह रिकॉर्ड पर भरोसा किया है। जो बैंक विभिन्न बैंक खातों, वाउचर, डे-बुक्स आदि से संबंधित है। प्रत्येक निष्कर्ष बड़ी संख्या में बैंक खातों, उनके तहत की गई प्रविष्टियों और बैंक के रिकॉर्ड में परिलक्षित विभिन्न लेनदेन को संदर्भित करता है। लेकिन इसमें अभियोजन पक्ष के नेतृत्व में किसी गवाह का बयान शामिल नहीं है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाएगा कि अभियोजन का पूरा मामला केवल दस्तावेजी साक्ष्य पर आधारित था, न कि मौखिक साक्ष्य पर। निष्कर्ष इन दस्तावेजों में की गई विभिन्न प्रविष्टियों की सराहना और विचार पर आधारित हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष ने बैंक रिकॉर्ड के अपने दस्तावेजों पर भरोसा किया था, जिनका उल्लेख आरोप-पत्र में किया गया है और जिसके संबंध में मृतक-अपीलार्थी द्वारा बार-बार प्रार्थना की गई थी, फिर भी न तो आपूर्ति की गई और न ही निरीक्षण किया गया।

38. वर्तमान मामले में यह स्पष्ट रूप से स्पष्ट है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी का भी मानना था कि दस्तावेजों की आपूर्ति न करने से वास्तव में पूर्वाग्रह उत्पन्न हुआ है। एक

बार जब उस निष्कर्ष को दर्ज कर लिया गया, तो अपनाई जाने वाली कार्रवाई का उचित तरीका मामले को नए सिरे से जांच के लिए भेजना था, न कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा क्या किया गया था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने जांच अधिकारी को केवल दस्तावेज़ उपलब्ध कराने और फिर अतिरिक्त निष्कर्ष दर्ज करने का निर्देश दिया। दोषी कर्मचारी पर पहले ही पक्षपात किया जा चुका था।

39. चुनौती का एक और आधार है जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए। मृत अपीलार्थी ने इस आधार पर आदेश को विशेष चुनौती दी है कि यह सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित नहीं किया गया था। प्रत्यर्थी इस बात पर विवाद नहीं करता है कि शास्ति लगाने वाला सक्षम प्राधिकारी, निदेशक मंडल था न कि प्रबंध निदेशक। हालाँकि, प्रबंध निदेशक द्वारा पारित शास्ति लगाने के आदेश का बचाव यह प्रस्तुत करके किया जाना चाहिए कि आदेश पारित करने से पहले, संबंधित रिकॉर्ड प्रशासक के समक्ष रखे गए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रासंगिक समय पर निदेशक मंडल कार्यरत नहीं था और अतः, उसकी शक्तियों का प्रयोग प्रशासक द्वारा किया जा रहा था। प्रशासक की स्वीकृति मात्र से अधिकार क्षेत्र की अंतर्निहित कमी का दोष दूर नहीं होता। आक्षेपित आदेश से पता चलता है कि प्रबंध निदेशक ने सोच-समझकर उपयोग किया है। न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए रिकॉर्ड पर कोई सामग्री नहीं रखी गई है कि जांच अधिकारी के निष्कर्षों को जांच रिपोर्ट और मृत अपीलार्थी के बचाव के साथ सक्षम प्राधिकारी अर्थात प्रशासक के समक्ष रखा गया था।

जिसने सोच-समझकर और फिर अपराध का निष्कर्ष दर्ज किया। अतः, आक्षेपित आदेश उस आधार पर भी टिकाऊ नहीं है।

40. लेकिन, यह तथ्य कि जांच हुए और अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा आदेश पारित किए हुए काफी समय बीत चुका है और मामले की लंबितता के दौरान उस कर्मचारी की भी मृत्यु हो गई है, हम मामले को नए सिरे से जांच करने के लिए भेजते हैं। हालाँकि, ऐसी परिस्थितियों में, कर्मचारी की मृत्यु के कारण, बर्खास्तगी का आदेश 09.09.1992 को पारित होने के समय अर्थात 30 वर्ष से अधिक समय पर नए सिरे से जांच शुरू करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। मृतक कर्मचारी के परिवार में उसकी विधवा, बेटा और बेटी हैं। साथ ही, हमने यह भी पाया कि मृत कर्मचारी के खिलाफ आरोप गंभीर प्रकृति के थे। अतः, न्याय के हित में, हालांकि हम मानते हैं कि 09.09.1992 को पारित सेवा से

बर्खास्तगी का आदेश न्याय की प्रकृति के सिद्धांतों का उल्लंघन है और अतः, कानून में टिकाऊ नहीं है, हम निर्देश देते हैं कि मृत कर्मचारी को ऐसा माना जाएगा कि वे बिना किसी वित्तीय लाभ के, सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने तक सेवा में बने रहे। प्रत्यर्थी अपने अंतिम वेतन की गणना काल्पनिक आधार पर करेगा जो मृतक कर्मचारी ने सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के समय प्राप्त किया होगा और उस आधार पर, मृत कर्मचारी को देय पेंशन की गणना करेगा। मृतक की विधवा मृत कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से पारिवारिक पेंशन की पात्र होगी और पारिवारिक पेंशन की बकाया राशि तदनुसार निकाली जाएगी और विधवा को यथाशीघ्र भुगतान किया जाएगा। इसके अलावा, विधवा अपने जीवनकाल के दौरान नियमों के अनुसार पारिवारिक पेंशन की पात्र होगी।

विद्वान एकलपीठ द्वारा पारित आदेश को रदद् किया जाता है। तदनुसार, उपरोक्त तरीके और सीमा तक अपील को आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(प्रवीर भटनागर), न्यायमूर्ति **(मनिन्द्र मोहन श्रीवास्तव), न्यायमूर्ति**

Karan/106

टिप्पणी: इस निर्णय का हिन्दी अनुवाद निविदा फर्म **राजभाषा सेवा संस्थान** द्वारा किया गया है, जिसे फर्म के निदेशक डॉ. वी. के. अग्रवाल, द्वारा मान्य और सत्यापित किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन व कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।